सोर्ज (sorge) शब्द [से] समझता है कि वह एक दिन मरेगा। यह मृत्यु का
प्रत्यक्ष व्यक्ति के अन्दर मृत्यु का बोध 'त्रास' में होता है। 'मृत्यु का त्रास अपने ही
रहता है। ... कार्य से उत्पन्न होता है। इस त्रास में डासेन अपनी मृत्यु का
...रता है। वह अपने अन्दर मृत्यु की स्थिति अनुभव करने लगता है।

लिए आरम्भ में डासेन मृत्यु की ओर अपने अवसर होने का तथ्य अपने से ही
...ता है। वह मृत्यु को बात से भागता है। वस्तुतः मृत्यु जीवन के अन्त में
आती हो, ऐसी बात नहीं है। डासेन के जीवन-काल में मृत्यु निरन्तर उसके साथ
रहती है। मनुष्य प्रतिक्षण मरा करता है। यह तथ्य 'अनेक के समान एक' मनुष्य
को दिखाई नहीं देता है। वह सोचता है कि लोग मरते हैं; मैं उनकी तरह नहीं हूं;
लोग कोई एक व्यक्ति नहीं होते हैं। इसलिए दूसरे लोगों को मरते देखकर व्यक्ति
अपनी मृत्यु की अनुभूति नहीं करता है। दूसरे लोगों की मृत्यु पर दृष्टि रहने से
मृत्यु का त्रास उत्पन्न नहीं होता है। अपने वैयक्तिक अस्तित्व के बारे में विचार
करते ही वह समझ में आने लगता है कि मेरे जीवन को मृत्यु किसी भी समय
समाप्त कर सकती है। जीवन कोई सरल, सपाट, निर्द्वन्द्व मार्ग की भांति नहीं है
जिसका अन्त मृत्यु में हो जाता है। वस्तुतः संसार में पड़ते ही मनुष्य के जीवन के
साथ मृत्यु अपरिहार्य रूप से लगी रहती है। हर व्यक्ति मृत्यु के निकट पहुंचता जा
रहा है। पिछले साल वह मृत्यु के जितना निकट था, इस वर्ष वह उससे अधिक निकट
है; कल से वह आज मृत्यु के अधिक निकट है, एक क्षण पहले से अब वह अधिक
मृत्यु के निकट पहुंच गया है। जीवन का एक-एक क्षण मृत्यु को निकट बुला रहा है।
इस प्रकार सारा जीवन मृत्यु की ओर दौड़ते बीत जाता है। कोई व्यक्ति एक क्षण
के लिये भी इस दौड़ में रुक नहीं सकता है। वह मृत्यु को टालने के लिये अपनी
दौड़ की गति धीमी करना चाहे तो भी उसके लिये यह सम्भव नहीं है। सब लोगों
को एक गति से मृत्यु की ओर दौड़ना ही पड़ता है।

मृत्यु की ओर दौड़ने वाले डासेन की पांच विशेषतायें हैडेगर ने बताई हैं।
एक तो, मृत्यु डासेन की अन्तरतम निहित-शक्ति (potentiality) है। मृत्यु
से विभूषित रहने वाला डासेन का परमसत् डासेन को मृत्यु का परिचय कराता है।
मृत्यु का चिन्तन करते हुये आगे बढ़ने पर डासेन 'अनेक के समान एक' से अर्थात्
अपने सामाजिक रूप से दूर हटकर एकान्त में पहुंच जाता है। वह अपने अन्दर
अपना परमसत्, त्रास और मृत्यु का साक्षात्कार करता है। दूसरे, मृत्यु डासेन की
निरपेक्ष (irrelative) निहित-शक्ति है। डासेन अपने परमसत् में मृत्यु का
... निहित देखकर स्वयं मृत्यु के स्वरूप का अनुभव करने लगता है और उसका यह

अनुभव अन्य लोगों की होती हुई मृत्यु देखकर प्राप्त होने वाले अनुभव से सर्वथा
भिन्न है। मृत्यु के इस निरपेक्ष अनुभव में डासेन अपने प्रामाणिक अस्तित्व को
पहिचानता है। मृत्यु की निरपेक्षता व्यक्ति को जन-समूह से बाहर निकालकर
अकेलापन और वैयक्तिकता प्रदान करती है। तीसरे, डासेन को यह भी ज्ञात हो
जाता है कि वह मृत्यु से बचना चाहे तो बच नहीं सकता है। मृत्यु के ऊपर
विचार करने से डासेन मृत्यु से बचने का प्रयास भी नहीं करता है। जब वह
जान लेता है कि मृत्यु उसके परमसत् का अपरिहार्य गुण है तो वह अपने को
मृत्यु के लिए स्वतन्त्र छोड़ देता है। इस स्थिति को प्राप्त हुए डासेन को 'मृत्यु की
ओर स्वतन्त्रता' (Freedom-toward-death) की संज्ञा दी गई है।
अपनी मृत्यु के हेतु स्वतन्त्र होकर व्यक्ति अवसर के हाथ पड़ने के खतरे से बच
जाता है। उसे मृत्यु के सम्बन्ध में रहने वाली भ्रामक धारणाओं से भी मुक्ति
मिल जाती है। अपनी निजी मृत्यु के अनुभव से अन्य लोगों की मृत्यु का भी यथार्थ
अनुमान लग जाता है। चौथे, डासेन की मृत्यु अवश्यम्भावी (certain) है।
लोगों को मरते देखकर मृत्यु की अवश्यम्भाविता यथार्थ रूप में नहीं जानी जा
सकती है। मृत्यु प्रकृति-प्रदत्त या मनुष्य निर्मित वस्तुओं जैसी कोई वस्तु नहीं है।
इसलिए उसे अन्य वस्तुओं की तरह प्रमाणित भी नहीं किया जा सकता है। मृत्यु
की यथार्थता जब प्रत्यक्ष अनुभव होने लगती है तो वह इतनी यथार्थ दिखाई देती
है कि संसार की अन्य वस्तुएँ भी उतनी यथार्थ और निश्चित नहीं जानी जा सकती
है। डासेन मृत्यु की अनुभूति में ही अपने परमसत् और अपने सम्पूर्ण डासेन को
जान सकता है। पांचवें, डासेन की मृत्यु का 'कब' अनिश्चित है। 'कब' की
अनिश्चितता किन्तु साथ ही उसकी अवश्यम्भाविता डासेन में त्रास उत्पन्न
करती है। उसे त्रास का कारण 'न – कुछ' प्रतीत होता है। यही डासेन के
अस्तित्व की पराकाष्ठा है। मैं इसी स्थिति में अपने डासेन को समग्र रूप से
समझ पाता हूँ। इस प्रकार हैडेगर को अपने पहले प्रश्न का उत्तर मिल
जाता है।

दूसरा प्रश्न डासेन की प्रामाणिकता का है, वह भी इसी मृत्यु की अव-
धारणा से सम्बन्ध रखता है। मृत्यु के अनुभव के साथ-साथ डासेन के अपने
परमसत् का अनुभव प्राप्त होता है। इस स्व-परमसत् की निहित शक्ति (poten-
tiality) की परीक्षा होनी चाहिए। उसकी प्रामाणिकता जांचने के लिए
अन्तरात्मा (conscience) अपराध (guilt) और निश्चय (resolve)
का विश्लेषण करना चाहिए। अन्तरात्मा से हैडेगर का तात्पर्य आत्मा या बुद्धि

जैसे किसी संकाय (faculty) से नहीं है। वह कहता है कि अन्तरात्मा एक पुकार है। यह वाणी का ही एक रूप है। 'अनेक के समान एक' डासेन जब अन्य लोगों के सम्पर्क में आता है तो वाणी का प्रयोग होता है। किन्तु अन्दर से उठने वाली पुकार स्वर नहीं होती है। उसकी आवाज फिर भी हमें सुनाई देती है। अन्तरात्मा की पुकार वही होती है जिसे हम अपने अन्दर से अपने विश्वास में लेते हैं। हमें जिन बातों में ऊपर से संदेह होता है उन पर यह अन्तरात्मा निर्णय लेकर एक निश्चय बात कहती है। यद्यपि इसका रूप अनिर्दिष्ट है किन्तु यह हमारे सामने निर्दिष्ट तथ्य रखती है। अन्दर से उठने वाली यह पुकार समाज में खोये मनुष्य को अपने वैयक्तिक रूप की ओर खींचती है। यह पुकार पूर्व योजना बद्ध नहीं होती है। इसमें सदा वही बात नहीं होती है जो हम चाहते हैं। हमारी इच्छा के विरुद्ध बातें भी इसमें उठा करती हैं। फिर भी यह पुकार अन्य कहीं से नहीं आती है। हमारे अन्दर ही यह उत्पन्न होती है। यह पुकार न आत्मा से उत्पन्न होती है और न ईश्वर उत्पन्न करता है। यह पुकार डासेन की ही है। त्रास का अनुभव करने पर डासेन अपनी ही चिन्ता से यह पुकार सुनता है।

अन्तरात्मा की पुकार में डासेन अपना अपराध (guilt) समझने लगता है। 'गिल्ट' का आशय दूसरे लोगों के प्रति ऋणी होना भी है। अपराध भाव में डासेन अपने में कुछ कमी अनुभव करता है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उसने कोई गल्ती की है या दुष्कर्म किया है जिसके लिए वह पछताता है। वस्तुतः डासेन अपने में शून्यता (nothingness) का अनुभव करता है। वह शून्यता का अनुभव ही उसे अपराध लगता है।

निश्चय (resolve) भी परमसत् की एक विशेषता है। डासेन जब त्रास से सामना करने के लिए प्रस्तुत होता है तो वह निश्चय करता है। यह निश्चय ही हेडेगर के विचार में 'प्रामाणिक स्व-परमसत्' है जो अपनी प्रामाणिकता अक्षुण्ण रखते हुए संसार में रहता है। यह निश्चय अन्तरात्मा और अपराध से निकट का सम्बन्ध रखता है और इन तीनों से डासेन की प्रामाणिकता ज्ञात होती है।

इन दोनों प्रश्नों का सम्बन्ध अन्त में काल से है क्योंकि काल के विषय में विचार करते समय ही हेडेगर ने ये दोनों प्रश्न खड़े किये थे। प्रामाणिक डासेन अपना सम्बन्ध काल के तीनों आयाम भूत, भविष्य और वर्तमान से रखता है। काल के तीनों आयाम काल को 'अपने आप से बाहर 'झत्' के रूप में उद्घाटित

करते हैं। इसलिए हेडेगर इन तीनों को काल की तीन एकस्टेसीज़ (ex-stases) कहता है।

हेडेगर के विचार से परमसत् का प्रामाणिक ज्ञान 'ऐतिहासिकता' (historicity) में ही हो सकता है। मानव इतिहास में एक प्रकार की गति होती रहती है जो भौतिक या यांत्रिक गति से बिल्कुल भिन्न है। सफल और दक्ष इतिहासकार इस ऐतिहासिकता की गति को पहिचानते हैं। वे इतिहास में केवल घटनायें और तिथियाँ ही उद्धृत नहीं करते वरन् वे ऐतिहासिकता की गति देखकर वर्तमान और भविष्य में घटने वाली घटनाओं का भी अनुमान लगा लेते हैं। केवल ऊपरी घटनाओं का विवरण नीरस और तत्वहीन होता है। उसके अन्तरतम में प्रवाहित होने वाली ऐतिहासिकता ही महत्वपूर्ण है। वही कार्य-कारण के दो तटों के बीच से प्रवाहित होती हुई भविष्य का निर्माण करती है। उसको जाने बिना परमसत् का बोध नहीं हो सकता है।

सत्य का सार

हेडेगर का एक लेख 'सत्य के सार पर' (On the Essence of Truth) है। सत्य की समस्या दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उस पर आदि काल से दार्शनिक गम्भीर चिन्तन करते आ रहे हैं। हेडेगर ने भी इस समस्या पर विचार किया। उपर्युक्त लेख में उसने सत्य के सार पर एक मौलिक सूझ दी है। जिस सत्य से हेडेगर का प्रयोजन है वह किसी विशेष प्रकार का सत्य नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य सामान्य सत्य से है। यह कहा जा सकता है कि हेडेगर बौद्धिक सत्य पर विचार करना चाहता है। प्रारम्भ में दार्शनिकों ने जिस सत्य को चिन्तन का विषय बनाया था वह मानव जीवन में प्रविष्ट होकर 'डासेन' के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रारम्भिक दार्शनिकों ने प्रश्न किया था कि जो कुछ है उसका सार क्या है? यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वह सत्य परमसत् का रूप धारण कर एक और अविभाज्य हो गया है।

सत्य का एक सिद्धान्त तर्कवाक्यीय सत्य (propositional truth) मानता है। इसके अनुसार सत्य वही है जो तर्कवाक्य और वस्तु के बीच सामंजस्य रखे। यह सत्य वस्तुगत ही हो सकता है। यहाँ सत्य का अर्थ होगा सही (right)। कांट की अपनी-आपमें-वस्तुओं पर यह सिद्धान्त लागू नहीं हो सकता है। जो वस्तु हमारी दृष्टि से परे हैं उसके विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि वह वस्तु और उसका तर्कवाक्य कोई सामंजस्य रखते हैं। ईसाई ईश्वरवादियों ने सत्य की परिभाषा ईश्वर पर आधारित कर दी। जब ईश्वर की रची गई वस्तुयें ईश्वर के

'स्वतन्त्रता' या 'होने-देना' को इतना महत्वपूर्ण समझने के कारण हैडेगर वस्तुओं के बजाय सतों की बात करता है। मनुष्य का जहां तक वस्तुओं से सम्बन्ध है, वह डासेन या तत्रास्ति (being-there) कहलाता है और परमसत् (Being) वस्तुओं से निरपेक्ष और दूर है। 'दि लैटर आन ह्यू मनिज्म' में हैडेगर परमसत् का स्वरूप अधिक स्पष्ट करते हुए कहता है कि परमसत् न तो ईश्वर है और न संसार का आधार है। जो कुछ है उससे वह बहुत दूर है, किन्तु फिर भी मनुष्य के निकट है। मनुष्य के लिए परमसत् सब से अधिक निकट है।

'होने-देने' की अवधारणा समझने के लिए दो बातों पर ध्यान देना होगा— एक तो जो कुछ है उसके 'अनावरण' (un-covering) को 'सत्य' कहते हैं और दूसरे 'अनावरण' की अभिव्यक्ति (ex-position) ही 'अस्तित्व' (ex-sistence) कहलाती है। विचार करने से वस्तु के ऊपर आदि काल से पड़ा हुआ आवरण दूर होने लगता है और सत्य प्रकट हो जाता है। प्रारम्भ के मनुष्य ने जब यह विचार किया होगा कि यह सब क्या है — तभी से सत्य उद्घाटित होने लगा और मानव सभ्यता, ज्ञान और दर्शन का विकास हो चला। इस प्रकार सत्य और अनावरण का घनिष्ट संबन्ध है। सत्य का संबन्ध अस्तित्व से भी है। किन्तु हैडेगर ने यहां 'अस्तित्व' का एक विशेष अर्थ निर्धारित किया है। सामान्य रूप से अभी तक अस्तित्व का तात्पर्य यह समझा जाता था कि कोई वस्तु है, वह यहां पाई जाती है। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में किर्केगार्ड और जेस्पर्स ने अस्तित्व का अर्थ यह समझा कि मनुष्य के शरीर और अन्तःकरण पर आधारित उसके नैतिक प्रयत्न अस्तित्व के परिचायक हैं। इस अर्थ के अनुसार सत्य का निरावरण लक्षित नहीं होता है। हैडेगर ने इसीलिए अस्तित्व अर्थात् ऐक्जिस्टेंस का सन्धि-विच्छेद ऐक्स-जिस्टेंस (ex-sistence) रूप में किया और उसका अर्थ ऐक्स-पोजीसन (ex-posi-
जिसके) बताया।[1] मनुष्य का अस्तित्व इसीलिए माना जाता है कि वह आवरण
स्थापित से अनावरण के क्षेत्र में पहुंच कर सत्य जान सकता है। अपने अस्तित्व
रे मन तो ही वह यह प्रश्न पूंछ सकता है कि यह सब क्या है ? हैडेगर की इस अव-
, चाहे सु तुलना प्लेटो की गुफा से निकल कर सूर्य के प्रकाश में देखने और विचार
ई वस्तु हो। निक से की जा सकती है। दोनों में पर्याप्त साम्य है। किन्तु हैडेगर
और सत्य की अभिव्यक्ति दार्शनिक तक ही सीमित नहीं है।
"Heidegger ओं के बीच रहने के कारण अनजाने ही सत्य के निकट होता
he 'neighbou
at as of a 'wans 'ex-position' of the thinker.
ing."
—Existence and Being, p. 146

है। अनावरण को समझने के लिए 'स्वतन्त्रता' या 'होने-देना' समझ लेना आवश्यक है।

'होने-देना' के तात्पर्य यह है कि मनुष्य वस्तुओं से जैसी वे है उसी रूप में सम्बन्ध रखता है। पशु या अन्य प्राणी ऐसा नहीं कर सकते। डाक्टर, अध्यापक, कारीगर आदि वस्तुओं को यथार्थ रूप में समझने का प्रयत्न करते हैं और उनकी प्रकृति समझकर उनसे व्यवहार रखते हैं। हर व्यक्ति अपने ढंग से सत्य के अना-वरण या अभिव्यक्ति से प्रयोजन रखता है। उदाहरण के लिए डाक्टर रोगी की परीक्षा करता है, उसके रोग को समझता है, उस रोग के निदान की खोज करता है, रोगी के लिए सबसे अच्छी औषधि निर्धारित करता है। ये सब कार्य उचित ढंग से करने पर ही वह डाक्टर हो सकता है। उसके लिए रोगी है, विशेष प्रकार का रोग है, औषधि है, उपचार की विधि है तभी वह डाक्टर हो सकता है अन्यथा नहीं। यही स्थिति अन्य मनुष्यों के साथ भी है। इसलिये 'होने-देना' का यही तात्पर्य हुआ कि वस्तुयें जैसी है उसी रूप में उनको जानना और उनसे व्यवहार करना। यह स्वतन्त्रता मनुष्य को ही प्राप्त हैं। हैडेगर के इस विवेचन से स्पष्ट है कि सत्य वैज्ञानिक या दार्शनिक ज्ञान तक ही सीमित नहीं है बल्कि जो भी सभ्यता के इतिहास में रह रहा है वह मनुष्य अपने ढंग से सत्य से सम्बन्ध रखता है।

फिर भी सत्य के उद्घाटन में दार्शनिकों का महत्वपूर्ण स्थान है। दार्शनिक दृष्टि सम्पूर्ण पर रहती है। उसने सम्पूर्ण पर चिन्तन किया और सत् तथा परमसत् खोजकर मानव अस्तित्व के लिए बहुत बड़ा कार्य किया। दर्शन के इतिहास में हैराक्लीटस ने सम्भवतः सब से पहले पशु तुल्य सुषुप्त मनुष्य में सत्य के प्रति आग्रह जाग्रत किया और आदि काल से आवरण में पड़ी हुई वस्तुओं को उद्घाटित करना आरम्भ कर दिया। तभी मनुष्य अपने अस्तित्व में आया और वह सत्य का साक्षात्कार करने लगा। इस प्रकार मनुष्य प्रकट रूप (overtness) में आया और उसे व्यापक संसार की वस्तुतें क्रमशः अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष होने लगी।

सत्य के साथ असत्य की अवधारणा भी विचारणीय है। हैडेगर जैसे तर्क-वाक्यीय सत्य को सीमित और एक प्रकार का सत्य मानता है उसी प्रकार तर्क-वाक्यीय असत्य को वह एक प्रकार का ही असत्य समझता है। यदि सत्य का उदय मनुष्य के अस्तित्व की अभिव्यक्ति के साथ तब हुआ जब उसने वस्तुओं को जैसी वे हैं उसी रूप में जानना और उनसे व्यवहार करना" प्रारम्भ किया, तो यह स्पष्ट है कि उसके पहले बहुत बड़ा काल ऐसा रहा होगा जब सत्य प्रकट नहीं हुआ था।